Chapter सत्तावन

सत्राजित की हत्या और मणि की वापसी

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह सत्राजित की हत्या के बाद भगवान् कृष्ण ने शतधन्वा का वध किया और अक्रूर द्वारा किस तरह स्यमन्तक मणि द्वारका लाई गई।

जब श्रीकृष्ण ने सुना कि लाक्षागृह में पाँचों पांडवों के जल कर मर जाने की संभावना है, तो वे सांसारिक शिष्टाचार के नाते बलराम के साथ हस्तिनापुर गये यद्यपि वे सर्वज्ञ होने के नाते जानते थे कि यह समाचार गलत है। कृष्ण के द्वारका से बाहर चले जाने पर अक्रूर तथा कृतवर्मा ने शतधन्वा को उकसाया कि वह सत्राजित से स्यमन्तक मणि चुरा ले। उनकी बातों में आकर पापी शतधन्वा ने सोते हुए सत्राजित की हत्या कर दी और वह मणि चुरा लाया। रानी सत्यभामा अपने पिता की मृत्यु से अत्यन्त शोकाकुल थीं अत: वे श्रीकृष्ण को यह दुखद समाचार बतलाने के लिए हस्तिनापुर दौड़ी गईं। तब शतधन्वा को मारने के लिए श्रीकृष्ण बलराम सहित द्वारका लौट आये।

शतधन्वा सहायता माँगने के लिए अक्रूर तथा कृतवर्मा के पास गया किन्तु जब उन्होंने सहायता देने से इनकार कर दिया तो, वह उस मणि को अक्रूर के पास छोड़ कर अपनी जान बचाकर भाग गया। कृष्ण तथा बलराम ने उसका पीछा किया और कृष्ण ने अपने चक्र से उसका सिर काट लिया। जब कृष्ण को स्यमन्तक मणि शतधन्वा के पास नहीं मिला तो बलराम ने कहा कि हो सकता है कि शतधन्वा ने किसी के पास उसे रख दिया हो। बलराम ने कृष्ण से यह भी कहा कि तुम मणि ढूँढ़ने द्वारका लौट जाओ जबकि मैं विदेहराज के यहाँ जाना चाहता हूँ। इस तरह बलराम मिथिला चले गये जहाँ वे कुछ वर्षों तक रहे और इसी काल में उन्होंने दुर्योधन को गदायुद्ध की शिक्षा दी।

भगवान् कृष्ण द्वारका लौट आये और सत्राजित का दाहकर्म सम्पन्न कराया। जब अक्रूर तथा

कृतवर्मा ने शतधन्वा के मारे जाने का समाचार सुना तो वे दोनों द्वारका छोड़ कर भाग गये। इसके बाद ही द्वारका में अनेक प्रकार के—मानसिक, शारीरिक इत्यादि—उत्पात होने लगे जिससे नागरिकों ने यही अर्थ निकाला कि हो न हो यह अक्रूर के निष्कासन के कारण है। शहर के बड़े बूढ़े कहने लगे, ''एक बार बनारस में सूखा पड़ा और वहाँ के राजा ने अक्रूर के पिता के साथ, जो उस समय बनारस में प्रवास पर थे, अपनी पुत्री की शादी कर दी। इस उपहार के फलस्वरूप सूखा समाप्त हो गया।'' बड़े-बूढ़ों ने सोचा कि अक्रूर में अपने पिता जैसी शक्ति है, अत: अक्रूर को वापस लाया जाये।

श्रीकृष्ण जानते थे कि इन उत्पातों का मुख्य कारण अक्रूर का निष्कासन नहीं है। फिर भी उन्होंने अक्रूर को द्वारका वापस बुलवाया और उनका आदर-सत्कार किया तथा मधुर वाणी में उनसे कहा, ''मैं जानता हूँ कि शतधन्वा ने वह मणि आपके पास छोड़ा है। चूँकि सत्राजित के कोई पुत्र नहीं है, अत: उसकी छोड़ी हुई सारी सम्पत्ति का उचित उत्तराधिकारी उसकी पुत्री की सन्तान है। तो भी अच्छा यही होगा कि इस दुखदायी मणि को आप अपने ही पास रखें किन्तु एक बार मुझे इसे अपने सम्बन्धियों को दिखला देने दें।'' अक्रूर ने वह मणि कृष्ण को भेंट कर दिया। यह मणि सूर्य के समान चमक रहा था। किन्तु अपने परिवार वालों को वह मणि दिखलाने के बाद कृष्ण ने उसे अक्रूर को फिर लौटा दिया।

श्रीबादरायणिरुवाच
विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ।
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणि: उवाच—बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; विज्ञात—अवगत; अर्थ:—तथ्यों से; अपि—यद्यपि; गोविन्द:—भगवान् कृष्ण; दग्धान्—जल कर भस्म हुए; आकर्ण्य—सुनकर; पाण्डवान्—पाण्डु-पुत्रों को; कुन्तीम्—उनकी माता कुन्ती को; च—तथा; कुल्य—कुलरीति; करणे—पूरा करने के लिए; सह-राम:—बलराम के साथ; ययौ—गये; कुरून्—कुरुओं के राज्य में।

श्री बादरायणि ने कहा : यद्यपि जो कुछ घटित हुआ था भगवान् गोविन्द उससे पूर्णतया अवगत थे, फिर भी जब उन्होंने यह समाचार सुना कि पाण्डव तथा महारानी कुन्ती जल कर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, तो वे कुलरीति पूरा करने के उद्देश्य से बलराम के साथ कुरुओं के राज्य में गये।

तात्पर्य : भगवान् को पूरी तरह ज्ञात था कि पाण्डव दुर्योधन के द्वारा रचे गये हत्या-षड्यंत्र से बच

निकले हैं यद्यपि सारे संसार ने यह झूठी खबर सुनी थी कि पाण्डव अपनी माता समेत अग्नि में जल मरे हैं।

भीष्मं कृपं स विदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ।
तुल्यदु:खौ च सङ्गम्य हा कष्टमिति होचतु: ॥ २॥

शब्दार्थ

भीष्मम्—भीष्म; कृपम्—आचार्य कृप; स-विदुरम्—तथा विदुर से भी; गान्धारीम्—धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी से; द्रोणम्—आचार्य द्रोण से; एव च—तथा; तुल्य—समान रूप से; दु:खौ—शोकपूर्ण; च—तथा; सङ्गम्य—मिल कर; हा—हाय; कष्टम्—कितना कष्टकारक; इति—इस प्रकार; ह ऊचतु:—वे बोले।

दोनों ही विभु भीष्म, कृप, विदुर, गान्धारी तथा द्रोण से मिले। उन्हीं के समान दुख प्रकट करते हुए वे बिलख उठे, ''हाय! यह कितना कष्टप्रद है!''

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि जो लोग इस हत्याकाण्ड में सम्मिलित थे वे पाण्डवों की मृत्यु का समाचार सुनकर तनिक भी दुखी नहीं थे। किन्तु यहाँ जिन महानुभावों का विशेष उल्लेख है—भीष्म, कृप, विदुर, गान्धारी तथा द्रोण—वे इस सम्भावित दुर्घटना को सुनकर वास्तव में दुखी थे।

लब्ध्वैतदन्तरं राजन्शतधन्वानमूचतु: ।
अक्रूरकृतवर्माणौ मनि: कस्मान्न गृह्यते ॥ ३॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—पाकर; एतत्—इस; अन्तरम्—अवसर को; राजन्—हे राजा (परीक्षित); शतधन्वानम्—शतधन्वा से; ऊचतु:—कहा; अक्रूर-कृतवर्माणौ—अक्रूर तथा कृतवर्मा ने; मनि:—मणि; कस्मात्—क्यों; न गृह्यते—न ले लिया जाय।

इस अवसर का लाभ उठा कर, हे राजन्, अक्रूर तथा कृतवर्मा शतधन्वा के पास गये और उससे कहा, ''क्यों न स्यमंतक मणि को हथिया लिया जाय?''

तात्पर्य : अक्रूर तथा कृतवर्मा ने तर्क किया कि चूँकि कृष्ण तथा बलराम द्वारका में नहीं हैं, अत: सत्राजित को मार कर मणि को चुराया जा सकता है। श्रील श्रीधर स्वामी उल्लेख करते हैं कि इन दोनों ने शतधन्वा से जाकर चापलूसी की होगी कि ''तुम हमसे अधिक बहादुर हो अत: तुम उसका वध करो।''

योऽस्मभ्यं सम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य न: ।

कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

य:—जिसने; अस्मभ्यम्—हममें से प्रत्येक को; सम्प्रतिश्रुत्य—वादा करके; कन्या—उसकी पुत्री; रत्नम्—रत्न जैसी; विगर्ह्य—अवमानना करके; न:—हमको; कृष्णाय—कृष्ण को; अदात्—दिया; न—नहीं; सत्राजित्—सत्राजित ने; कस्मात्—क्यों; भ्रातरम्—उसके भाई को; अन्वियात्—अनुगमन करना चाहिए।

''सत्राजित ने वादा करके हमारी तिरस्कारपूर्वक अवहेलना करते हुए अपनी रत्न जैसी पुत्री हमें न देकर कृष्ण को दे दी। तो फिर सत्राजित अपने भाई के ही मार्ग का अनुगमन क्यों न करे?''

तात्पर्य : चूँकि सत्राजित का भाई प्रसेन जबरदस्ती मारा गया था अत: ''अपने भाई के मार्ग का अनुगमन'' का आशय स्पष्ट है। यह हत्या का षड्यंत्र है।

यह सुविदित है कि अक्रूर तथा कृतवर्मा दोनों ही भगवान् के महान् शुद्ध भक्त हैं अतएव उनके असामान्य व्यवहार की व्याख्या अपेक्षित है। आचार्यों ने इस प्रकार व्याख्या की है : श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि अक्रूर उच्च कोटि के शुद्ध भगवद्भक्त थे किन्तु वे गोकुलवासियों के क्रोध के शिकार बने क्योंकि वे कृष्ण को वृन्दावन से ले गये थे। गोस्वामी आगे कहते हैं कि कृतवर्मा ने कंस का साथ दिया था—दोनों ही भोजवंश के थे इसलिए अब कृतवर्मा को बुरी संगति का फल मिल रहा था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने एक वैकल्पिक व्याख्या की है—अक्रूर तथा कृतवर्मा दोनों ही सत्राजित से नाराज थे क्योंकि उसने कृष्ण का अपमान किया था तथा द्वारका में उनके विषय में झूठी अफवाह फैलायी थी। सामान्य परिस्थितियों में अक्रूर तथा कृतवर्मा को अत्यधिक प्रसन्नता हुई होती कि भगवान् कृष्ण ने सुन्दरी सत्यभामा को ब्याह लिया है। शुद्ध भक्त होने से वे इस जोड़ी से कभी अप्रसन्न नहीं हुए होते, न ही वे भगवान् के ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वी बनते। अत: उनके प्रतिद्वन्द्वी जैसे व्यवहार में उनका कुछ प्रच्छन्न मन्तव्य था।

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तम: ।
शयानमवधील्लोभात्स पाप: क्षीण जीवित: ॥ ५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; भिन्न—प्रभावित; मतिः—मन वाला; ताभ्याम्—उन दोनों के द्वारा; सत्राजितम्—सत्राजित को; असत्-तमः—अत्यन्त दुष्ट; शयानम्—सोते हुए; अवधीत्—मार डाला; लोभात्—लालच में आकर; सः—उसने; पापः—पापी; क्षीण—घटी हुई; जीवितः—आयु वाला।

इस तरह उसका मन उनकी सलाह से प्रभावित हो गया और दुष्ट शतधन्वा ने लोभ में आकर सत्राजित को सोते हुए मार डाला। इस तरह पापी शतधन्वा ने अपनी आयु क्षीण कर ली।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार *असत्तमः* शब्द सूचक है कि शतधन्वा मूलतः दुष्ट बुद्धि था और सत्राजित से अत्यन्त घृणा करता था।

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् ।
हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; विक्रोशमानानाम्—चीखती; क्रन्दन्तीनाम्—तथा चिल्लाती; अनाथ—जिनके कोई रक्षक न हो, ऐसे व्यक्ति; वत्—सदृश; हत्वा—मार कर; पशून्—पशुओं को; सौनिक—कसाई; वत्—सदृश; मणिम्—मणि को; आदाय—लेकर; जग्मिवान्—चला गया।

जब सत्राजित के महल की स्त्रियाँ चीख रही थीं और असहाय की तरह रो रही थीं तब शतधन्वा ने वह मणि ले लिया और वहाँ से चलता बना जैसे कुछ पशुओं का वध करने के बाद कोई कसाई करता है।

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता ।
व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सत्यभामा—रानी सत्यभामा; च—तथा; पितरम्—अपने पिता को; हतम्—मारा हुआ; वीक्ष्य—देख कर; शुचा-अर्पिता—शोकमग्न; व्यलपत्—विलाप करती; तत तात—हे पिता, हे पिता; इति—इस प्रकार; हा—हाय; हता—मारी गई; अस्मि—हूँ; इति—इस प्रकार; मुह्यती—मूर्च्छित हुई।

जब सत्यभामा ने अपने मृत पिता को देखा तो वे शोक में डूब गईं। ''मेरे पिता, मेरे पिता! हाय, मैं मारी गयी'' विलाप करती हुई वे मूर्छित होकर गिर गईं।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार अपने पिता की मृत्यु पर सत्यभामा की वेदनापूर्ण भावनाएँ तथा शब्द कृष्ण की *लीला शक्ति* द्वारा प्रेरित थे और वे शतधन्वा के विरुद्ध भगवान् की उग्र प्रतिक्रिया को तैयार करने के लिए थे।

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ।

कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तैल—तेल के; द्रोण्याम्—विशाल पात्र में; मृतम्—शव को; प्रास्य—रख कर; जगाम—गई; गज-साह्वयम्—कुरु-राजधानी हस्तिनापुर; कृष्णाय—कृष्ण को; विदित-अर्थाय—जो पहले से ही अवगत थे; तप्ता—शोकयुक्त; आचख्यौ—उसने कह सुनाया; पितुः—अपने पिता का; वधम्—वध।

रानी सत्यभामा अपने पिता के शव को तेल के एक विशाल कुंड में रख कर हस्तिनापुर गईं जहाँ उन्होंने अपने पिता की हत्या के बारे में बहुत ही शोकातुर होकर कृष्ण को बतलाया जो पहले से इस स्थिति को जान रहे थे।

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; आकर्ण्य—सुनकर; ईश्वरौ—दोनों प्रभु; राजन्—हे राजन् (परीक्षित); अनुसृत्य—अनुकरण करते हुए; नृ-लोकताम्—मानव समाज की रीति; अहो—हाय; नः—हमारे लिए; परमम्—महानतम; कष्टम्—दुख; इति—इस प्रकार; अस्र—आँसू-भरे; अक्षौ—दोनों नेत्रों में; विलेपतुः—दोनों ने विलाप किया।

हे राजन्, जब कृष्ण तथा बलराम ने यह समाचार सुना तो वे आह भर उठे, ''हाय! यह तो हमारे लिए सबसे बड़ी दुर्घटना (विपत्ति) है!'' इस तरह मानव समाज की रीतियों का अनुकरण करते हुए वे शोक करने लगे और उनकी आँखें आँसुओं से डबडबा आईं।

आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आगत्य—लौट कर; भगवान्—भगवान्; तस्मात्—उस स्थान से; स-भार्यः—अपनी पत्नी सहित; स-अग्रजः—तथा अपने बड़े भाई के साथ; पुरम्—अपनी राजधानी में; शतधन्वानम्—शतधन्वा को; आरेभे—तैयारी की; हन्तुम्—मारने के लिए; हर्तुम्—छीन लेने के लिए; मणिम्—मणि को; ततः—उससे।

भगवान् अपनी पत्नी तथा बड़े भाई के साथ अपनी राजधानी लौट आये। द्वारका आकर उन्होंने शतधन्वा को मारने और उससे मणि छीन लेने की तैयारी की।

सोऽपि कृतोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

स:—वह (शतधन्वा); अपि—भी; कृत-उद्यमम्—अपने को तैयार किये हुए; ज्ञात्वा—जान कर; भीत:—डरा हुआ; प्राण—अपना प्राण; परीप्सया—बचाने की इच्छा से; साहाय्ये—सहायता के लिए; कृतवर्माणम्—कृतवर्मा से; अयाचत—याचना की; स:—उसने; च—तथा; अब्रवीत्—कहा।

यह जान कर कि भगवान् कृष्ण उसे मार डालने की तैयारी कर रहे हैं, शतधन्वा भयभीत हो उठा। वह अपने प्राण बचाने के लिए कृतवर्मा के पास गया और उससे सहायता माँगी किन्तु कृतवर्मा ने इस प्रकार उत्तर दिया।

नाहमीस्वरयो: कुर्यां हेलनं रामकृष्णयो: ।
को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२॥
कंस: सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजित: श्रिया ।
जरासन्ध: सप्तदशसंयुगाद्विरथो गत: ॥ १३॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; ईश्वरयो:—दोनों प्रभुओं के प्रति; कुर्याम्—कर सकता हूँ; हेलनम्—अपराध; राम-कृष्णयो:—बलराम तथा कृष्ण के प्रति; क:—कौन; नु—निस्सन्देह; क्षेमाय—सौभाग्य; कल्पेत—प्राप्त कर सकता है; तयो:—उन दोनों को; वृजिनम्—कष्ट; आचरन्—पहुँचाते हुए; कंस:—कंस; सह—सहित; अनुग:—उसके अनुयायी; अपीत:—मृत; यत्—जिसके विरुद्ध; द्वेषात्—द्वेष से; त्याजित:—त्यक्त; श्रिया—अपने ऐश्वर्य से; जरासन्ध:—जरासन्ध; सप्तदश—सत्रह; संयुगात्—युद्धों से; विरथ:—रथविहीन; गत:—हो गया।

[कृतवर्मा ने कहा] : मैं भगवान् कृष्ण तथा बलराम के विरुद्ध अपराध करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। भला उन्हें कष्ट देने वाला अपने सौभाग्य की आशा कैसे कर सकता है? कंस तथा उसके सारे अनुयायियों ने उनसे शत्रुतावश अपनी सम्पत्ति तथा अपने प्राण गँवाये और उनसे सत्रह बार युद्ध करने के बाद जरासन्ध के पास एक भी रथ नहीं बचा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि *हेलनम्* शब्द भगवान् की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने का सूचक है और *वृजिनम्* शब्द दोनों भगवानों के प्रति अपराध का द्योतक है।

प्रत्याख्यात: स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ।
सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

प्रत्याख्यात:—मना किया गया; स:—वह, शतधन्वा; च—तथा; अक्रूरम्—अक्रूर से; पार्ष्णि-ग्राहम्—सहायता के लिए; अयाचत—विनती की; स:—वह, अक्रूर; अपि—भी; आह—बोला; क:—कौन; विरुध्येत—उनका विरोध कर सकता है; विद्वान्—जानते हुए; ईश्वरयो:—दोनों विभुओं के; बलम्—बल को।

अपनी याचना अस्वीकृत हो जाने पर शतधन्वा अक्रूर के पास गया और अपनी रक्षा के लिए उनसे अनुनय-विनय की। किन्तु अक्रूर ने भी उसी तरह उससे कहा : भला ऐसा कौन है, जो उन

दोनों के बल को जानते हुए उन दोनों विभुओं का विरोध करेगा?

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ।
चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

य:—जो; इदम्—इस; लीलया—खेल-खेल में; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; सृजति—उत्पन्न करता है; अवति—पालन करता है; हन्ति—नष्ट करता है; च—तथा; चेष्टाम्—प्रयोजन; विश्व-सृज:—ब्रह्माण्ड के (गौण) स्त्रष्टा (ब्रह्मा आदि); यस्य—जिसका; न विदु:—नहीं जानते; मोहिता:—मोहग्रस्त; अजया—अपनी मोहनी शक्ति द्वारा।

यह तो परमेश्वर ही हैं, जो अपनी लीला के रूप में इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। यहाँ तक कि विश्व स्त्रष्टागण भी उनके प्रयोजन को नहीं समझ पाते क्योंकि वे उनकी माया द्वारा मोहग्रस्त रहते हैं।

तात्पर्य : *य:* शब्द एकवचन है। इसका प्रयोग सूचित करता है कि ''कृष्ण तथा राम—दो ईश्वर'' का प्राय: जो सन्दर्भ दिया जाता है, वह *श्रीमद्भागवत* में व्यक्त एकेश्वरवाद के दृढ़ सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है। जैसाकि अनेक वैदिक ग्रंथों में बतलाया गया है एक परमेश्वर असंख्य रूपों में विस्तार करता है फिर भी वह एक सर्वशक्तिमान ईश्वर रहता है। उदाहरणार्थ, *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में यह कथन है—*अद्वैतमच्युतमनादिरनन्तरूपम्*—एक परमेश्वर अच्युत तथा अनादि है और वह असंख्य रूपों में विस्तार करता है। भगवान् की लीलाओं को सम्मान देने के लिए, जिनमें वे विस्तार करके अपने बड़े भाई बलराम के रूप में प्रकट होते हैं, यहाँ पर *भागवत* में ''दो ईश्वरों'' का उल्लेख हुआ है। किन्तु अन्तिम पंक्ति यह है कि भगवान् या परब्रह्म सत्य एक है, जो अपने आदि-कृष्ण रूप में प्रकट होता है।

य: सप्तहायन: शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भक: ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

य:—जो; सप्त—सात; हायन:—वर्षीय; शैलम्—पर्वत को; उत्पाट्य—उखाड़ कर; एकेन—केवल एक; पाणिना—हाथ से; दधार—धारण किया; लीलया—खेल-खेल में; बाल:—निरा बालक; उच्छिलीन्ध्रम्—कुकुरमुत्ता; इव—सदृश; अर्भक:—एक बालक।

सात वर्षीय एक बालक के रूप में कृष्ण ने समूचा पर्वत उखाड़ लिया और आसानी से इसे ऊपर उठाये रखा जिस तरह एक बालक कुकुरमुत्ता उठा लेता है।

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तस्मै—उस; भगवते—भगवान् को; कृष्णाय—कृष्ण को; अद्भुत—चकित करने वाले; कर्मणे—जिसके कार्य; अनन्ताय—असीम; आदि-भूताय—समस्त जगत के उद्गम को; कूट-स्थाय—जगत के अचल केन्द्र को; आत्मने—परमात्मा को; नमः—नमस्कार।.

''मैं उन भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ जिनका हर कार्य चकित करने वाला है। वे परमात्मा हैं, असीम स्त्रोत तथा समस्त जगत के स्थिर केन्द्र हैं।''

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ।
तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८॥

शब्दार्थ

प्रत्याख्यातः—अस्वीकार; सः—वह; तेन—उस (अक्रूर) के द्वारा; अपि—भी; शतधन्वा—शतधन्वा; महा-मणिम्—बहुमूल्य मणि को; तस्मिन्—उसके पास; न्यस्य—छोड़ कर; अश्वम्—घोड़े पर; आरुह्य—सवार होकर; शत—एक सौ; योजन—योजन (८ मील=१ योजन); गम्—जा सकने वाले; ययौ—रवाना हो गया।.

जब अक्रूर ने भी उसकी याचना अस्वीकार कर दी तो शतधन्वा ने उस अमूल्य मणि को अक्रूर के संरक्षण में रख दिया और एक घोड़े पर चढ़ कर भाग गया जो एक सौ योजन (आठ सौ मील) यात्रा कर सकता था।

तात्पर्य : *न्यस्य* शब्द का आशय है कि शतधन्वा को अब विश्वास हुआ कि यह मणि उसी का है और वह अपने एक मित्र के पास छोड़े जा रहा है। कहने का अर्थ यह है कि यह चोर प्रवृत्ति है।

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ।
अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन्गुरुद्रुहम् ॥ १९॥

शब्दार्थ

गरुड-ध्वजम्—झंडे में गरुड़ चिह्न वाले; आरुह्य—सवार होकर; रथम्—रथ में; राम—बलराम; जनार्दनौ—तथा कृष्ण ने; अन्वयाताम्—पीछा किया; महा-वेगैः—अत्यन्त तेज; अश्वैः—घोड़ों से; राजन्—हे राजा (परीक्षित); गुरु—अपने श्रेष्ठ की (सत्राजित की जो उनके श्वसुर थे); द्रुहम्—हिंसा करने वाला।.

हे राजन्, कृष्ण तथा बलराम, कृष्ण के रथ पर सवार हुए जिस पर गरुड़चिन्हित ध्वजा फहरा रहा था और जिसमें अत्यन्त तेज घोड़े जुते थे। वे अपने श्रेष्ठ (श्वसुर) के हत्यारे का पीछा करने लगे।

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ।

पद्भ्यामधावत्सन्त्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मिथिलायाम्—मिथिला में; उपवने—एक उपवन में; विसृज्य—छोड़ कर; पतितम्—गिरे हुए; हयम्—घोड़े को; पद्भ्याम्—पैदल; अधावत्—दौड़ने लगा; सन्त्रस्तः—भयभीत; कृष्णः—कृष्ण; अपि—भी; अन्वद्रवत्—पीछे दौड़े; रुषा—क्रुद्ध होकर।

मिथिला के बाहर एक बगीचे में वह घोड़ा जिस पर शतधन्वा सवार था गिर गया। भयभीत होकर उसने घोड़ा वहीं छोड़ दिया और पैदल ही भागने लगा। कृष्ण क्रुद्ध होकर उसका पीछा कर रहे थे।

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पदातेः—पैदल का; भगवान्—भगवान्; तस्य—उस; पदातिः—पैदल ही; तिग्म—तेज; नेमिना—धार वाले; चक्रेण—अपने चक्र से; शिरः—सिर; उत्कृत्य—काट कर; वाससोः—शतधन्वा के वस्त्रों के भीतर; व्यचिनोत्—ढूँढ़ा; मणिम्—मणि को।

चूँकि शतधन्वा पैदल ही भागा था इसलिए भगवान् ने भी पैदल ही जाते हुए अपने तेज धार वाले चक्र से उसका सिर काट लिया। तब भगवान् ने स्यमन्तक मणि के लिए शतधन्वा के सभी वस्त्रों को छान मारा।

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अलब्ध—न पाकर; मणिः—मणि; आगत्य—पास आकर; कृष्णः—कृष्ण ने; आह—कहा; अग्र-ज—अपने बड़े भाई के; अन्तिकम्—निकट; वृथा—व्यर्थ ही; हतः—मारा गया; शतधनुः—शतधन्वा; मणिः—मणि; तत्र—उसके पास; न विद्यते—नहीं है।

मणि न पाकर भगवान् कृष्ण अपने बड़े भाई के पास गये और कहने लगे, ''हमने व्यर्थ ही शतधन्वा को मार डाला। उसके पास वह मणि नहीं है।''

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ।
कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; आह—कहा; बलः—बलराम ने; नूनम्—निश्चय ही; सः—वह; मणिः—मणि; शतधन्वना—शतधन्वा द्वारा; कस्मिंश्चित्—किसी विशेष; पुरुषे—व्यक्ति के पास; न्यस्तः—छोड़ी गई है; तम्—उसको; अन्वेष—ढूँढ़ो; पुरम्—पुरी में; व्रज—जाओ।

इस पर बलराम ने उत्तर दिया, ''निस्सन्देह, शतधन्वा ने मणि को किसी के संरक्षण में रख

छोड़ा होगा। तुम नगरी में लौट जाओ और उस व्यक्ति को ढूँढ़ो।''

अहं वैदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदनन्दनः ॥ २४॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; वैदेहम्—विदेह के राजा को; इच्छामि—चाहता हूँ; द्रष्टुम्—देखना; प्रिय-तमम्—अत्यन्त प्रिय; मम—मेरा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; मिथिलाम्—मिथिला (विदेह राज्य की राजधानी); राजन्—हे राजा (परीक्षित); विवेश—प्रवेश किया; यदु-नन्दनः—यदुवंशी बलराम ने।

''मैं विदेह के राजा से भेंट करना चाहता हूँ क्योंकि वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं।'' हे राजन्, यह कह कर, प्रिय यदुवंशी बलराम ने मिथिला नगरी में प्रवेश किया।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम ने अन्त में शतधन्वा को मिथिला के बाहरी क्षेत्र में पकड़ा था। चूँकि इस नगर का राजा बलदेव का प्रिय मित्र था इसलिए उन्होंने इस नगर में प्रवेश करने और वहीं कुछ समय बिताने का निश्चय किया।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयां आस विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ २५॥

शब्दार्थ

तम्—उसको, बलराम को; दृष्ट्वा—देख कर; सहसा—तुरन्त; उत्थाय—उठ कर; मैथिलः—मिथिला के राजा ने; प्रीत-मानसः—स्नेह का अनुभव करते हुए; अर्हयाम् आस—उनका आदर किया; विधि-वत्—शास्त्रीय आदेशों के अनुसार; अर्हणीयम्—पूज्य; समर्हणैः—पूजा-सामग्री से।

जब मिथिला के राजा ने बलराम को समीप आते देखा तो वह तुरन्त अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। राजा ने बड़े प्रेम से विशद पूजा करके परम आराध्य प्रभु का सम्मान शास्त्रीय आदेशों के अनुसार किया।

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ।
ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६॥

शब्दार्थ

उवास—रहे; तस्याम्—उस; कतिचित्—कई; मिथिलायाम्—मिथिला में; समाः—वर्ष; विभुः—सर्वशक्तिमान श्री बलराम; मानितः—सम्मानित; प्रीति-युक्तेन—वत्सल; जनकेन—राजा जनक (विदेह) द्वारा; महा-आत्मना—महात्मा; ततः—तब; अशिक्षत्—सीखा; गदाम्—गदा; काले—समय में; धार्तराष्ट्रः—धृतराष्ट्र के पुत्र; सुयोधनः—दुर्योधन ने।

सर्वशक्तिमान भगवान् बलराम अपने प्रिय भक्त जनक महाराज से सम्मानित होकर मिथिला

में कई वर्षों तक रुके रहे। इसी समय धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने बलराम से गदा युद्ध करने की कला सीखी।

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वन: ।
अप्राप्तिं च मणे: प्राह प्रियाया: प्रियकृद्विभु: ॥ २७॥

शब्दार्थ

केशव:—कृष्ण; द्वारकाम्—द्वारका में; एत्य—आकर; निधनम्—मृत्यु; शतधन्वन:—शतधन्वा की; अप्राप्तिम्—न मिलने से; च—तथा; मणे:—मणि; प्राह—कहा; प्रियाया:—अपनी प्रियतमा (सत्यभामा) के; प्रिय—आनन्दित; कृत्—करते हुए; विभु:—सर्वशक्तिमान प्रभु।

भगवान् केशव द्वारका आये और उन्होंने शतधन्वा की मृत्यु तथा स्यमन्तक मणि को खोज पाने में अपनी असफलता का विवरण दिया। वे इस तरह बोले जिससे उनकी प्रियतमा सत्यभामा प्रसन्न हो सकें।

तात्पर्य : स्वाभाविक है कि सत्यभामा को यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि उनके पिता का हत्यारा मारा गया। किन्तु उनके पिता की स्यमन्तक मणि मिलनी अभी शेष थी अत: उसे प्राप्त करने के कृष्ण के संकल्प को सुनकर भी वे प्रसन्न थीं।

तत: स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।
साकं सुहृद्भिर्भगवान्या या: स्यु: साम्परायिकी: ॥ २८॥

शब्दार्थ

तत:—तब; स:—उसने, कृष्ण ने; कारयाम् आस—सम्पन्न कराया; क्रिया—अनुष्ठान कर्म; बन्धो:—अपने सम्बन्धी (सत्राजित) का; हतस्य—मारे गये; वै—निस्सन्देह; साकम्—साथ साथ; सुहृद्भि:—शुभचिन्तकों के; भगवान्—भगवान्; या: या:—जो जो; स्यु:—होना चाहिए; साम्परायिकी:—इस संसार से कूच करने के समय।

तब भगवान् कृष्ण ने अपने मृत सम्बन्धी सत्राजित के लिए विविध अन्तिम संस्कार सम्पन्न कराये। भगवान् परिवार के शुभचिन्तकों के साथ शवयात्रा में सम्मिलित हुए।

अक्रूर: कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।
व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकाया: प्रयोजकौ ॥ २९॥

शब्दार्थ

अक्रूर: कृतवर्मा च—अक्रूर तथा कृतवर्मा; श्रुत्वा—सुनकर; शतधनो:—शतधन्वा का; वधम्—वध; व्यूषतु:—बाहर चले गये; भय-वित्रस्तौ—भय से त्रस्त; द्वारकाया:—द्वारका से; प्रयोजकौ—उकसाने वाले।

जब अक्रूर तथा कृतवर्मा ने, जिन्होंने शुरू में शतधन्वा को अपराध करने के लिए उकसाया

था, यह सुना कि वह मारा गया है, तो वे भय के कारण द्वारका से भाग गये और उन्होंने अन्यत्र जाकर शरण ली।

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अक्रूरे—अक्रूर के; प्रोषिते—प्रवास में रहते हुए; अरिष्टानि—अपशकुन; आसन्—उत्पन्न हुए; वै—निस्सन्देह; द्वारका-ओकसाम्—द्वारकावासियों के लिए; शारीराः—शारीरिक; मानसः—तथा मानसिक; तापाः—कष्ट; मुहुः—बारम्बार; दैविक—उच्चतर शक्तियों द्वारा उत्पन्न; भौतिकाः—अन्य प्राणियों द्वारा उत्पन्न।

अक्रूर की अनुपस्थिति में द्वारका में तमाम अपशकुन होने लगे और वहाँ के निवासी शारीरिक तथा मानसिक कष्टों के अतिरिक्त दैविक तथा भौतिक उत्पातों से भी त्रस्त रहने लगे।

तात्पर्य : यहाँ पर *दैविक* शब्द दैवी प्राणियों द्वारा उत्पन्न उत्पातों का द्योतक है। ये उत्पात प्रायः भूकम्प, समुद्री लहरों या मौसम की चरम अवस्था के रूप में प्रकट होते हैं। आजकल भौतिकतावादी लोग इन उत्पातों को पार्थिव कारणों से उत्पन्न मानते हैं। उन्हें इसकी अनुभूति नहीं होती कि ये अधिदेवों की ओर से दिये जाने वाले दंड होते हैं। *भौतिक* शब्द पृथ्वी के प्राणियों द्वारा यथा मनुष्यों, पशुओं तथा कीटों द्वारा उत्पन्न उत्पात का द्योतक है।

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार अक्रूर स्यमन्तक मणि लेकर वाराणसी नगरी में रहने चला गया जहाँ वह 'दानपति' के नाम से विख्यात हो गया। वहाँ उसने सोने की वेदिकाओं में सुयोग्य पण्डितों की व्यापक सभा में कई अग्नि-यज्ञ सम्पन्न किये।

द्वारका के कुछ नागरिकों को ऐसा अनुभव हुआ कि ये असामान्य विपत्तियाँ अक्रूर की अनुपस्थिति से उत्पन्न हैं। वे यह भूल गये कि (जैसा अगले श्लोक में वर्णित है) द्वारका में भगवान् की उपस्थिति होने से ऐसा होना असम्भव था। जब भगवान् इस धरा पर आते हैं, तो उनकी लीलाएँ मनुष्यों जैसी होती हैं फलतः ''लोकप्रियता से अवज्ञा पनपती है'' वाला सिद्धान्त लागू होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक सन्तों के जीवन के दौरान तथा ईश्वर के अवतारों के समय कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपने बीच ऐसे महापुरुषों के पद की प्रशंसा नहीं कर पाते या केवल कभी कभी करते हैं। किन्तु दूसरी ओर, भाग्यशाली तथा प्रबुद्ध लोग, जो भगवान् तथा उनके पार्षदों की असली स्थिति से परिचित होते हैं, परम धन्य हैं।

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।
मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); उपदिशन्ति—प्रस्ताव कर रहे थे; एके—कुछ; विस्मृत्य—भूल कर; प्राक्—पूर्वकाल में; उदाहृतम्—कहा गया; मुनि—मुनियों के; वास—आवास में; निवासे—में रहते हुए; किम्—कैसे; घटेत—घटित हो सकती हैं; अरिष्ट—विपत्तियाँ; दर्शनम्—प्राकट्य।.

कुछ लोगों ने प्रस्तावित तो किया [कि ये विपत्तियाँ अक्रूर की अनुपस्थिति के कारण हैं] : किन्तु वे भगवान् की उन महिमाओं को भूल गए थे, जिनका वर्णन वे प्राय: स्वयं किया करते थे। निस्सन्देह उस स्थान में विपत्तियाँ कैसे आ सकती हैं, जहाँ समस्त मुनियों के आश्रय रूप भगवान् निवास करते हों?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक के विषय में निम्नलिखित अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। वाराणसी में अक्रूर सोने की वेदिका में यज्ञ करने तथा ब्राह्मणों को प्रभूत दान देने के लिए विख्यात हो गया। जब द्वारका के नागरिकों ने इसके विषय में सुना तो कुछ ने गप्प मारी कि कृष्ण ने अक्रूर को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उसे निष्कासित कर दिया है। इस नवीन तथा अविश्वसनीय कलंक को मिटाने के लिए भगवान् कृष्ण ने द्वारका में अनेक विपत्तियों को जन्म दिया जिससे नागरिकों को अक्रूर की वापसी के लिए उत्प्रेरित किया जा सके। तब भगवान् ने इसकी आज्ञा दे दी।

देवेऽवर्षति काशीश: श्वफल्कायागताय वै ।
स्वसुतां गाण्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

देवे—जब देवता, इन्द्र; अवर्षति—वर्षा नहीं करता था; काशी-ईश:—वाराणसी का राजा; श्वफल्काय—श्वफल्क (अक्रूर के पिता) को; आगताय—आये हुए; वै—निश्चय ही; स्व—अपनी; सुताम्—पुत्री; गान्दिनीम्—गान्दिनी को; प्रादात्—दे दिया; तत:—तब; अवर्षत्—वर्षा हुई; स्म—निस्सन्देह; काशिषु—काशी राज्य में।.

[बड़े बूढ़ों ने कहा] : पूर्वकाल में जब इन्द्र ने काशी (बनारस) पर वर्षा करनी बन्द कर दी तो उस शहर के राजा ने अपनी पुत्री गान्दिनी श्वफल्क को दे दी जो उस समय उससे मिलने आया था। तब तुरन्त ही काशी राज्य में वर्षा हुई।

तात्पर्य : श्वफल्क अक्रूर का पिता था और नागरिकों ने सोचा कि पुत्र भी पिता की ही भाँति शक्तिसम्पन्न होगा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि अक्रूर का सम्बन्ध काशी के राजा से था,

जो कि उसका नाना था, अत: विपत्ति के समय अक्रूर उस शहर को गया।

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारीका: ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसका (श्वफल्क का); सुत:—पुत्र; तत्-प्रभाव:—उसकी शक्ति से सम्पन्न; असौ—वह; अक्रूर:—अक्रूर; यत्र यत्र—जहाँ जहाँ; ह—निस्सन्देह; देव:—इन्द्र; अभिवर्षते—वर्षा करेगा; तत्र—वहाँ; न—नहीं; उपतापा:—कष्टप्रद उत्पात; न—नहीं; मारिका:—असामयिक मृत्युएँ।

जहाँ भी इन्द्र के ही समान शक्तिशाली उसका बेटा अक्रूर ठहरता है, वहीं वह पर्याप्त वर्षा करेगा। निस्सन्देह, वह स्थान समस्त कष्टों तथा असामयिक मृत्युओं से रहित हो जायेगा।

इति वृद्धवच: श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दन: ॥ ३४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वृद्ध—वृद्धजनों के; वच:—शब्द; श्रुत्वा—सुनकर; न—नहीं; एतावत्—एकमात्र यह; इह—विचाराधीन बात का; कारणम्—कारण; इति—इस प्रकार; मत्वा—मान कर; समानाय्य—उसे वापस लाकर; प्राह—कहा; अक्रूरम्—अक्रूर से; जनार्दन:—भगवान् कृष्ण ने।

वृद्धजनों से ये वचन सुनकर भगवान् जनार्दन ने यह जानते हुए कि अपशकुनों का एकमात्र कारण अक्रूर की अनुपस्थिति नहीं थी, उन्हें द्वारका वापस बुलवाया और उनसे बोले।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् कृष्ण परम नियन्ता हैं इसलिए यह स्पष्ट था कि उन्हीं की इच्छा से द्वारका में कुछ उत्पात प्रकट हुए थे। ऊपर से ये उत्पात अक्रूर की अनुपस्थिति से उत्पन्न प्रतीत हो रहे थे और मंगलप्रद स्यमंतक मणि की अनुपस्थिति से भी। किन्तु हमें स्मरण रखना होगा कि द्वारका भगवान् कृष्ण का नित्य धाम है। यह दैवी आनन्द की नगरी है क्योंकि यहाँ भगवान् निवास करते हैं। फिर भी इस जगत के राजकुमार के रूप में अपनी लीलाएँ करने के लिए कृष्ण ने जो आवश्यक था उसे किया और अक्रूर को वापस बुलवा भेजा।

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रिया: कथा: ।
विज्ञाताखिलचित्त ज्ञ: स्मयमान उवाच ह ॥ ३५॥
ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तको मणि: श्रीमान् विदित: पूर्वमेव न: ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

पूजयित्वा—आदर करके; अभिभाष्य—सत्कार करके; एनम्—उसको (अक्रूर को); कथयित्वा—विचार-विमर्श करके; प्रियाः—मधुर; कथाः—कथाएँ; विज्ञात—पूर्णतया अवगत; अखिल—सारी बातों का; चित्त—(अक्रूर का) हृदय; ज्ञः—जानने वाले; स्मयमानः—हँसते हुए; उवाच ह—कहा; ननु—निश्चय ही; दान—दान के; पते—हे स्वामी; न्यस्तः—रखा गया; त्वयि—तुम्हारे संरक्षण में; आस्ते—है; शतधन्वना—शतधन्वा द्वारा; स्यमन्तकः मणिः—स्यमंतक मणि; श्री-मान्—ऐश्वर्यवान्; विदितः—ज्ञात; पूर्वम्—पहले ही; एव—निस्सन्देह; नः—हमारे द्वारा।

भगवान् कृष्ण ने अक्रूर का स्वागत-सत्कार किया, उनका गोपनीय तौर पर अभिवादन किया और उनसे मधुर शब्द कहे। तब हर बात जानने वाले होने के कारण भगवान्, जो कि अक्रूर के हृदय से भलीभाँति अवगत थे, हँसे और उनको सम्बोधित किया, ''हे दानपति, अवश्य ही वह ऐश्वर्यशाली स्यमन्तक मणि शतधन्वा तुम्हारे संरक्षण में छोड़ गया था और अब भी तुम्हारे पास है। असल में, हम इसे लगातार जानते रहे हैं।''

तात्पर्य : अक्रूर के साथ भगवान् कृष्ण का जो बर्ताव है उससे पुष्टि होती है कि वे (सचमुच) भगवान् के महान् भक्त हैं।

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ।
दायं निनीयापः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

सत्राजितः—सत्राजित के; अनपत्यत्वात्—पुत्ररहित होने से; गृह्णीयुः—लेना चाहिए; दुहितुः—उसकी पुत्री के; सुताः—पुत्रों को; दायम्—उत्तराधिकार; निनीय—अर्पित करके; आपः—जल; पिण्डान्—तथा पिंडदान; विमुच्य—ऋण चुका कर; ऋणम्—ऋण, कर्जा; च—तथा; शेषितम्—शेष।

''चूँकि सत्राजित के कोई पुत्र नहीं है, अतः उसकी पुत्री के पुत्र उसके उत्तराधिकारी होंगे। उन्हें ही श्राद्ध के निमित्त तर्पण तथा पिण्डदान करना चाहिए, अपने नाना का ऋण चुकता करना चाहिए और शेष धन अपने लिए रखना चाहिए।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने उत्तराधिकार से सम्बन्धित निम्नलिखित स्मृति आदेश उद्धृत किया है—*पत्नी दुहितरश्चैव पितरो भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बन्धुः शिष्याः सब्रह्मचारिणः*—पहली उत्तराधिकारिणी पत्नी है, फिर (उसके मरने पर) पुत्रियाँ तब माता-पिता और फिर भाई और तब भाई के पुत्र, तब मरने वाले के ही गोत्र वाले पारिवारिक जन और अन्त में ब्रह्मचारी सहित शिष्यगण।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह कहते हैं कि चूँकि सत्राजित के कोई पुत्र न था और उसकी पत्नियाँ उसी के साथ मार डाली गई थीं और चूँकि उसकी पुत्री सत्यभामा को स्यमंतक मणि में कोई रुचि न

थी यद्यपि वह वैध उत्तराधिकारिणी थी इसलिए यह उसके पुत्रों की उचित सम्पत्ति थी।

श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* में व्याख्या की है, ''इस कथन के द्वारा भगवान् कृष्ण ने संकेत किया कि सत्यभामा पहले से गर्भवती है और उसका पुत्र ही इस मणि का असली दावेदार होगा और वही इस मणि को अक्रूर से लेगा (यदि उन्होंने इसे छिपाने का प्रयत्न किया)।''

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।
किन्तु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥
दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—तो भी; दुर्धरः—धारण करना असम्भव; तु—लेकिन; अन्यैः—दूसरों के द्वारा; त्वयि—तुम्हारे पास; आस्ताम्—रहना चाहिए; सुव्रते—हे विश्वसनीय व्रतधारी; मणिः—मणि; किन्तु—केवल; मम्—मुझ पर; अग्र-जः—मेरे बड़े भाई; सम्यक्—पूरी तरह; न प्रत्येति—विश्वास करते हैं; मणिम् प्रति—मणि के सम्बन्ध में; दर्शयस्व—इसे दिखला दो; महा-भाग—हे परम भाग्यशाली; बन्धूनाम्—मेरे सम्बन्धियों को; शान्तिम्—शान्ति; आवह—लाओ; अव्युच्छिन्नाः—अविच्छिन्न; मखाः—यज्ञ; ते—तुम्हारे; अद्य—अब; वर्तन्ते—चल रहे हैं; रुक्म—सोने की; वेदयः—वेदियों वाले।

''तो भी, हे विश्वासपात्र अक्रूर, यह मणि तुम्हारे संरक्षण में रहना चाहिए क्योंकि अन्य कोई इसे सुरक्षित नहीं रख सकता। बस एक बार यह मणि दिखला दो क्योंकि मैंने इसके विषय में अपने अग्रज से जो कुछ कहा है वे उस पर पूरी तरह विश्वास नहीं करते। इस तरह हे परम भाग्यशाली, तुम मेरे सम्बन्धियों को शान्त कर सकोगे। [हर व्यक्ति जानता है कि मणि तुम्हारे पास है क्योंकि] तुम इस समय लगातार सोने की बनी वेदिकाओं में यज्ञ सम्पन्न कर रहे हो।''

तात्पर्य : यद्यपि शास्त्रीय विधि के अनुसार इस मणि पर सत्यभामा के पुत्रों का अधिकार था, तो भी कृष्ण ने उसे अक्रूर के संरक्षण में रहने देने का निश्चय किया क्योंकि वे मणि की सम्पत्ति से निरन्तर धार्मिक यज्ञ कर रहे थे। निस्सन्देह, सोने की वेदिकाओं पर यज्ञ करने की अक्रूर की क्षमता मणि की शक्ति का सूचक है।

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।
आदाय वाससाच्छन्नः ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सामभिः—समन्वयात्मक, सन्धिपूर्ण; आलब्धः—धिक्कारा हुआ; श्वफल्क-तनयः—श्वफल्क का पुत्र; मणिम्—स्यमन्तक मणि को; आदाय—लेकर; वाससा—अपने वस्त्र में; आच्छन्नः—छिपाया हुआ; ददौ—दे दिया; सूर्य—सूर्य के; सम—समान; प्रभम्—तेज।

इस तरह भगवान् कृष्ण के समन्वयात्मक शब्दों से लज्जित होकर श्वफल्क-पुत्र उस मणि को वहाँ से निकाल कर ले आया जहाँ उसने अपने वस्त्रों में छिपा रखा था और उसे भगवान् को दे दिया। यह चमकीला मणि सूर्य की तरह चमक रहा था।

तात्पर्य : इस अध्याय में हम यह देख सकते हैं कि किस तरह मूल्यवान मणि ने इतना उत्पात, हिंसा तथा कष्ट उत्पन्न किया। यह उन लोगों के लिए निश्चय ही अच्छा सबक है, जो बाधारहित आध्यात्मिक जीवन बिताने के इच्छुक हैं।

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

स्यमन्तकम्—स्यमन्तक मणि को; दर्शयित्वा—दिखलाकर; ज्ञातिभ्यः—अपने सम्बन्धियों को; रजः—कल्मष; आत्मनः—अपने (झूठा थोपा हुआ); विमृज्य—पोंछ कर; मणिना—मणि से; भूयः—पुनः; तस्मै—उसको, अक्रूर को; प्रत्यर्पयत्—दे दिया; प्रभुः—भगवान् ने।

अपने सम्बन्धियों को स्यमन्तक मणि दिखला चुकने के बाद सर्वशक्तिमान भगवान् ने अपने विरुद्ध लगे झूठे आक्षेपों को दूर करते हुए उसे अक्रूर को लौटा दिया।

तात्पर्य : यह दूसरी बार है कि स्यमंतक मणि को लेकर भगवान् की ख्याति पर जो बट्टा लगा था उसे मणि के द्वारा ही दूर किया गया। निस्सन्देह भगवान् दूसरी बार वह मणि अपनी सच्चरित्रता सिद्ध करने के लिए द्वारका लाये। घटनाओं की यह विस्मयजनक शृंखला प्रदर्शित करती है कि जब भगवान् इस धरा पर अवतरित होते हैं, तो उनके ''समकक्षों'' में उनकी आलोचना करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। सारा भौतिक संसार छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति से दूषित है और इस अध्याय में भगवान् इसी अवाञ्छनीय गुण के स्वभाव को प्रदर्शित करते हैं।

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णो-
वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा
दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

य:—जो भी; तु—निस्सन्देह; एतत्—यह; भगवत:—भगवान् का; ईश्वरस्य—परम नियन्ता; विष्णो:—विष्णु का; वीर्य—पराक्रम से; आढ्यम्—समृद्ध; वृजिन—पापपूर्ण फल; हरम्—दूर करने वाला; सु-मङ्गलम्—अत्यन्त शुभ; च—तथा; आख्यानम्—कथानक; पठति—पढ़ता है; शृणोति—सुनता है; अनुस्मरेत्—स्मरण करता है; वा—अथवा; दुष्कीर्तिम्—अपकीर्ति; दुरितम्—तथा पाप को; अपोह्य—दूर करके; याति—प्राप्त करता है; शान्तिम्—शान्ति।

यह आख्यान, जो भगवान् विष्णु के पराक्रम के वर्णनों से युक्त है, पापपूर्ण फलों को दूर करता है और समस्त मंगल प्रदान करता है। जो कोई भी इसे पढ़ता, सुनता या स्मरण करता है, वह अपनी अपकीर्ति तथा पापों को भगा सकेगा और शान्ति प्राप्त करेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''सत्राजित की हत्या और मणि की वापसी'' नामक सत्तावनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।